भुक्ति और
मुक्ति-दायक
सविधि
श्री वाञ्छा
कल्पलता

श्रीवांछा-कल्पलता

(सविधि)

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण]   भाद्रपद पूर्णिमा   [६-००

दो शब्द

देवताओं की उपासना–साधना के फल-स्वरूप आध्यात्मिक लाभ तो होता ही है, भौतिक सुविधायें भी अनायास प्राप्त होती हैं। अतः जो यह समझते हैं कि वृद्धावस्था में ही भजन-पूजन करना आवश्यक है, बचपन और युवावस्था में उसके लिए उतना समय देने या अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है, वे भारी भ्रम में हैं।

सच तो यह है कि यदि बचपन से ही चुनी हुई प्रयोगात्मक उपासनाओं का अभ्यास कराया जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सब प्रकार से सुख-सुविधा-पूर्ण हो सकता है और अन्त में अलभ्य मोक्ष का भी वह अधिकारी बन सकता है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत 'श्री वांछा-कल्पलता' को ही लें। इसकी साधना स्वस्थ और शक्तिमान् व्यक्ति ही कर सकते हैं। वृद्धों के लिए नियमों का पालन करते हुए इसे करना कदाचित् ही सम्भव हो।

अनेक व्यक्ति इस 'कल्पलता' के अभ्यास से लाभ उठा चुके हैं और इसकी माँग बराबर बढ़ती ही जा रही है। इसका प्रमाण यह द्वितीय संस्करण है। इस संस्करण को नए रूप में प्रकाशित किया गया है, जिससे इसका उपयोग अधिक सरलता से हो सकेगा। आशा है कि अध्यात्म-प्रेमी इससे अभीष्ट लाभ उठाएँगे। इसी में हमारे परिश्रम की सार्थकता है।

भाद्र पूर्णिमा, २०४३ —कुल-भूषण

अनुक्रम

परिचय

श्री-कुल के उपासकों में 'श्रीवाञ्छा-कल्पलता' नामक मन्त्र-प्रयोग बड़ा लोक-प्रिय है। 'वाञ्छा'-शब्द का अर्थ है कामना, इच्छा, अभिलाषा आदि और 'कल्पलता' - शब्द से आशय है कल्प-वृक्ष या कल्पद्रुम नाम से प्रसिद्धदैवो वृक्ष-जैसी लता से, जो मुँह-माँगी वस्तु भक्तों को प्रदान करने की शक्ति रखती है। इस प्रकार 'वाञ्छा-कल्पलता'-पद का तात्पर्य यह है कि यह मन्त्र कल्पवृक्ष के समान अपने साधक की सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने की शक्ति रखता है।

'तान्त्रिक साहित्य' पृष्ठ ५८६ में म० म० पं० गोपीनाथ कविराज ने 'वांछा-कल्पलता' से सम्बन्धित अनेक पाण्डुलिपियों का उल्लेख किया है, जो बड़ौदा पुस्तकालय, संस्कृत विश्व-विद्यालय वाराणसी और रघुनाथ मंदिर पुस्तकालय जम्मू में संग्रहीत हैं। शोध-कर्ताओं को उनकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त कर प्रकाशित कराना चाहिए।

उक्त 'श्रीवाञ्छा-कल्पलता' प्रयोग के अन्त में 'आथर्वण सौभाग्य-काण्डे' वचन मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इसे अथर्व-वेद के सौभाग्य-काण्ड से उद्‌धृत किया गया है। यह प्रयोग चार पर्यायों में विभक्त है। प्रत्येक पर्याय में श्रीविद्या के मन्त्र से युक्त अथर्व-वेदोक्त मन्त्र दिए गए हैं। ये मन्त्र ऋग्वेद में

भी मिलते हैं। 'श्रीवांछा-कल्पलता' के इस सिद्ध प्रयोग के द्रष्टा वैवस्वत मनु (श्राद्ध देव) कहे गए हैं और प्रयोग में सङ्कलित विविध मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि क्रमशः आनन्द-भैरव, गणक, अङ्गिरा, कश्यप, वशिष्ठ, विश्वामित्र तथा सम्वर्तन बताए गए हैं।

'श्रीवांछा-कल्पलता' का उक्त प्रयोग अनेक रूपों में प्राप्त होता है। इन्दौर (मध्य प्रदेश) निवासी श्रीगोपालराव दिनकर महाशब्दे को एक विशेष रूप में यह प्रयोग दैवयोग से प्राप्त हुआ, जिसका विवरण उन्होंने अपने पत्र दिनाङ्क १६-६-७६ में निम्न प्रकार दिया था—

'...घटना सन् १९४२ के अगस्त मास की है। एक दिन मैं क्षिप्रा के पुल पर खड़ा नदी की शोभा देख रहा था कि मेरी दृष्टि एक अधेड़ व्यक्ति पर पड़ी, जो बड़े ही तेजस्वी, गौर-वर्ण तथा छोटे कद के थे। वातचीत चली। वे वस के लिए रुके थे और वस में वहुत देर थी। मैं उन्हें अपने विद्यालय में ले आया। वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि वे एक उच्च कोटि के शाक्त-साधक हैं और वैद्य भी हैं। इतना ही परिचय प्रगाढ़ स्नेह और मित्रता में वदलता गया और वे मेरे अत्यन्त निकट सम्वन्धी से वन गए। उन्हें उज्जैन (म० प्र०) स्थित किसी स्नेही से 'श्रीवांछा-कल्पलता' का एक अनुभूत प्रयोग मिला था, जो उनके पास हस्त - लिखित रूप में सुरक्षित था। मैंने भी उनकी अनुमति से उसकी प्रतिलिपि कर ली और उसे इस पत्र के साथ भेज रहा हूं।...'

श्री महाशब्दे से प्राप्त 'श्रीवांछा-कल्पलता' प्रयोग की विशेषता यह है कि इसमें अथर्व-वेदोक्त मन्त्रों का समावेश नहीं है।

पर्याय इसमें भी चार ही हैं किन्तु वैदिक मन्त्रों के स्थान पर इसमें स्तुतियों के पाठ का विधान है। निस्सन्देह यह एक अनूठा और सरल प्रयोग है। अतः प्रस्तुत 'श्रीवांछा-कल्पलता' विधान-सङ्कलन के अन्तर्गत सर्व-प्रथम इसी प्रयोग का प्रकाशन किया गया है। यह प्रयोग अभी तक कहीं से कदाचित् प्रकाशित नहीं हुआ है।

'श्री वांछा-कल्पलता' का अन्य प्रयोग, जिसमें अथर्व-वेदोक्त मन्त्रों का समावेश है, अनेक स्थलों पर हस्त-लिखित एवं प्रकाशित रूप में प्राप्त होता है किन्तु उनमें विविध प्रकार के पाठ-भेदादि अन्तर दृष्टिगत होते हैं। प्रस्तुत सङ्कलन में इस प्रयोग का प्रकाशन करते समय इसे अधिकाधिक शुद्ध एवं सर्व - मान्य रूप देने का प्रयास किया गया है। इसके लिए 'गुप्तावतार' योगिराज बाबा श्री मोतीलाल मेहता के हस्तलिखित 'श्रीकल्प-द्रुम' में दिए गए पाठ को हमने अपना आधार माना है।

पाठ-भेदादि-सम्बन्धी टिप्पणियाँ अनन्तश्री-विभूषित पूज्य-पाद श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज कृत 'श्रीविद्या-रत्नाकर' में उद्धृत प्रयोग एवं आचार्य पण्डित श्री शिवदत्त मिश्र शास्त्री द्वारा सम्पादित 'वांछा-कल्पलता' के आधार पर परिशिष्ट में दी गई हैं। इसके सिवा इन्दौर के श्री गोपालराव महाशब्दे ने भी इस प्रयोग की एक पाण्डुलिपि १७-१०-७६ को भेजी थी, जिसे ध्यान में रखा गया है।

जैसा कि प्रयोग के नाम से ही स्पष्ट है, इस मन्त्र की साधना से साधक की सभी मनो - कामनाएँ निश्चित ही पूर्ण होती हैं। इस सम्बन्ध में 'प्रयोग - पारिजात' के निम्न वचन ध्यान देने योग्य हैं—

आवर्तन - त्रयाल्लक्ष्मीः पञ्चावृत्त्या वशं जगत् ।
दशावृत्या शिवादीनां देवानां शक्ति-भाग् भवेत् ।। १
लक्षावृत्त्या सार्वभौमः दरिद्रोऽपि न संशयः ।
नार्थ - वादोऽथर्वणस्य वशिष्ठ - वचनं यथा ।। २
एतज्जपस्य कालस्तु रात्रौ याम - त्रयावधि ।
रात्रेश्चतुर्थ-प्रहरात् तथा सूर्योदयावधि ।। ३

अर्थात् 'श्रीवांछा-कल्पलता' मन्त्र की तीन आवृत्तियाँ प्रति-दिन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, पाँच आवृत्तियाँ प्रति-दिन करने से सारा संसार वशीभूत होता है और दश आवृत्तियाँ प्रति-दिन करने से शिवादि देवताओं की शक्ति से साधक सम्पन्न होता है। इस मन्त्र की एक लक्ष आवृत्ति से दरिद्र भी सार्वभौम अर्थात् सारे विश्व में माननीय होता है। इस मन्त्र के जप का काल रात्रि में चौथे प्रहर से लेकर सूर्योदय के होने तक निर्दिष्ट है। तन्त्रान्तर में इसी मन्त्र-प्रयोग के सम्बन्ध में निम्न वचन मिलते हैं—

वाञ्छा-कल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम् ।
स्मरणादेव सिद्धिः स्यात् यदिच्छति हि तद् भवेत् ।। १
एकावृत्त्या वशे लक्ष्मीः पञ्चावृत्त्या वशं जगत् ।
दशावृत्या तथा विष्णु - रुद्र - शक्तिर्भवेदिह ।। २
सार्वभौमः शतावृत्त्या भवत्येव न संशयः ।

अर्थात् 'श्रीवांछा-कल्पलता' मन्त्र के प्रयोग में होम और तर्पण करने की आवश्यकता नहीं होती। इसके साधक की जो भी इच्छा होती है, वह इस मन्त्र के स्मरण करने से ही पूरी हो जाती है। इस मन्त्र की एक आवृत्ति से लक्ष्मी मिलती है और पाँच आवृत्तियों से संसार वशीभूत होता है। दश आवृत्तियों से

विष्णु और रुद्र की शक्ति प्राप्त होती है। एक सौ आवृत्ति करने से साधक सारे विश्व में माननीय होता है, इसमें सन्देह नहीं।

'कुमार-संहिता' में इस मन्त्र का साधन - विधान निम्न प्रकार दिया गया है—

प्रजपेदिष्ट - सिद्धयर्थं विद्या - ग्रहण - संयुतः।
तद् भवेद् वेदिका - मन्त्रः भेदेनेत्यर्थ - विद्यया॥ १
अष्ट-वारं जपेन्नित्यं सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्।
जपेत् षोडश - साहस्रं तर्पणाहुति - योगतः॥ २
श्री-विद्यायास्तु साधर्म्यं साधयेत् साधितो मनुः।
पुरश्चर्या - विधानेन साधकः सर्वदा जपेत्॥ ३
तत् सर्वं लभते नित्यं वाञ्छा - कल्पलता-मनोः।
इत्येतत् कथितं गुह्यं भुक्ति - मुक्ति - प्रदायकम्॥ ४
जपेत् षोडश - साहस्रं षट् - साहस्रमथापि वा।
पायसेन हुनेद् देवि ! नारिकेल - फलैस्तिलैः॥ ५
असाध्यं साधयेल्लोके अवश्यं वशमाप्नुयात्।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ६

अर्थात् विधि-वत् मन्त्र की दीक्षा लेकर प्रति-दिन आठ बार इस मन्त्र का जप करे। इससे सभी अभीष्टों की प्राप्ति होती है। तर्पण और होम-सहित सोलह सहस्र इसका जप करना चाहिए। श्री-विद्या की साधना के नियमों का पालन करे और पुरश्चरण के विधान को ध्यान में रखकर जप करे। ऐसा करने से भुक्ति और मुक्ति-दायक इस 'वाछा-कल्पलता' मन्त्र से साधक को सदैव सभी प्रकार का लाभ होता है। इस मन्त्र का जप सोलह अथवा छः सहस्र करे। खीर, नारिकेल-फल और तिल से होम

करे। इस प्रयोग से असाध्य कामना भी पूर्ण होती है और सारा संसार वशीभूत होता है। अधिक क्या, इससे साधक की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

इस मन्त्र के प्रयोग-काल में दैवयोग से अथवा प्रमाद - वश कभी किसी दिन मन्त्र का जप न कर पाए, तो उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप अनशन-पूर्वक 'वांछा-कल्पलता' मन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिये।

प्रथम संस्करण में विनियोग के बाद ऋष्यादि - न्यास नहीं दिया गया था तथा कुछ और त्रुटियाँ रह गई थीं, जिन्हें इस संस्करण में दूर कर दिया गया है। आशा है कि इस नवीन संस्करण से साधकों को इस प्रयोग के करने में अधिक सुविधा होगी।
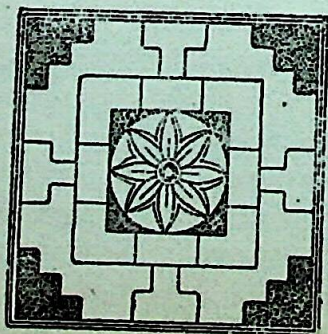
'श्रीवाञ्छा-कल्पलता'
का
एक अनूठा प्रयोग

[१] प्रथम पर्यायः

विनियोग—ॐ अस्य श्रीवाञ्छा-कल्पलता-मन्त्रस्य श्रीनल-दमयन्त्यौ ऋषी, गायत्री छन्दः, श्रीपरमेश्वर-परमेश्वरी-प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीनल-दमयन्ती-ऋषीभ्यां नमः शिरसि, गायत्री-छन्दसे नमः श्रीपरमेश्वर-परमेश्वरी-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमःसर्वाङ्गे ।

ध्यायेद्देवमनन्त - रूपमखिलं तेजात्मकं ज्योतिषम् ।
चिच्छक्ति शिवमीश्वरीं च सहितमात्मा अचिन्त्यं प्रभो ।।

निर्गुण गुणवान् देव जगदाधार त्वमीश्वर !
सत्य-ज्ञान-चिदात्मकं तव वपुः वन्दे शिवा-शङ्कर ।।

ॐ आदि-रूपं दिव्य - रूपं गुरु - रूपं निरामयम् ।
तेजो-रूपं सर्व-साक्षी विश्व-रूपं जनार्दनम् ।।

अ-रूपं उ-रूपं म-रूपं तम-रूपकम् ।
रज-रूपं सत्व-रूपं सत्य-रूपं परं पदम् ।।
आत्मा शिव सदा साक्षी जीवाभावं च चिन्मयम् ।
निरञ्जनं निराकारं सर्व-व्यापी चराचरम् ।।

परमं परमात्मानं परं धाम परात्परम् ।
अजिरं अपरं हंसः अपरं देह-चालकम् ।।

आकाशमवकाशं च खग-बिन्दुश्च नादजम् ।
अनादि-सिद्धमात्मानं परं ज्योतिः शिवात्मकम् ।।

सर्वं - तेजोमयं राम दिव्य - तेजोमयं सदा ।
शाश्वतं दण्ड-रहितं शान्तं शुद्धं सुनिर्मलम् ।।

अजं अव्ययं चिद्रूपं आनन्दानन्द-वर्द्धनम् ।
अक्षयं नित्य-सन्तुष्टं शास्ता-शासन-वर्जितम् ।।

अजात - अजितयोर्देव भूत - भव्य - भवत्प्रभा ।
विकृत-विश्व-साक्षी च विश्वं विश्व-सनातनम् ।।

ज्ञान-विज्ञानं त्वं विभुः ब्रह्मा ब्रह्म-प्रकाशकम् ।
चिन्मयं च चिदाकाश-भास्करं दिव्य-रूपके ।।

त्वं शून्यं पञ्च-शून्यं निर्गुणं गुण-वर्द्धनम् ।
त्वमेकं केवलं ब्रह्म नित्य-तृप्तं निरामयम् ।।

शिव-लिङ्गं ज्योति-रूपं शिवाकारं सु-दिव्यकम् ।
सदसद्-व्यापिनो सूक्ष्मं विराट् मङ्गलं हरिः ।।

त्वमसत्य - द्वन्द्व - रहितं सच्चिदानन्द -विग्रहम् ।
नित्याऽनित्य - शाश्वताय आत्म-लिङ्गाय ते नमः ।।

श्रीं ह्रीं क्लीं ह्स्सौः सौः गुं गुं गुं ग्लौं ग्लौं ग्लौं अमृत-कुम्भाय गं गं गं ऐं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं क्लीं वं वं वं भं भं भं क्षं क्षं क्षं हस्ख्फ्रें क्षिप्र-भैरवाय प्रसीद ।

ॐ वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्ती - नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि - दोष - प्रशान्तिदः ।।

ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथक्-धियां ।
निर्वैरितां प्रजायन्ते सम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ।।
।। इति प्रथम पर्यायः ।।

[२] द्वितीय पर्यायः

खं बालार्क-प्रभमिन्द्रनील-स्फटिकं श्वेताभ्र-विद्युज्ज्वलम् ।
शान्तं नाद-विलीन-चित्त-पवनं चक्राब्ज-चिह्नं भृशम् ।।
ब्रह्माद्या सनकादिभिः परिवृतं सिद्धैर्महा-योगिनाम् ।
एवं ध्यानमुपासितं हृदि मुदा ध्येयं महा-योगिभिः ।।
त्वमात्मा सर्व-भूतेषु साक्षी-रूपेण संस्थिता ।
केवलं ज्ञान-रूपाय तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ।:

अनङ्ग - रूप-रूपाय त्रिगुणं रहितं तनुम् ।
पञ्च-तत्वादि-रहितं तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ।।
अतीतं सर्व - भावेभ्यो बालार्क-सदृशं तनुम् ।
एवं सर्व-मयं पूर्णं तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ।।
इन्द्रियाणामधिष्ठाय भूतानामखिलेषु च ।
भूतेषु सततं व्याप्तं तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ।।
आब्रह्म-स्तम्भ-पर्यन्तं सर्व-व्यापी चराचरम् ।
परमानन्दं च यद्रूपं तस्मै ब्रह्मणे नमः ।।
निर्द्वन्द्वं नित्य-सन्तुष्टं निर्लेपं निर्मलं खलु ।
उपाधि-रहितं शान्तं तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ।।
एकायानन्त - रूपाय चिन्मयाय चिदात्मने ।
भूताय भूत-नाथाय तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ।।

लोकाय लोक-नाथाय अखिलाय जगत्पते ।
केवलं शुद्ध-शान्ताय तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ॥

आदि - मध्यान्त - हीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्त-जगदाधार तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ॥

प्रणम्य श्रीगुरु-नाथाय स्वात्मा-रामेण योगिनः ।
केवलं शुद्ध-शान्ताय तस्मै ब्रह्मणे ते नमः ॥

ह्लीं ह्लीं ह्लीं, क्लीं क्लीं क्लीं, ह्रीं ह्रीं ह्रीं, श्रीं श्रीं श्रीं, ह्रीं ह्रीं ह्रीं, क्लीं क्लीं क्लीं, ह्स्क्ष्म्ल्व्र्य्यूं आनन्द-भैरवाय भैरवी-सहिताय वं अमृतं कुरु कुरु ।

ॐ ह्रीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्व-नुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि-दोष - प्रशान्तिदः ॥

ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्-धियाम् ।
निर्वैरिता प्रजायन्ते सम्वादाम्ने ! प्रसीद मे ॥

॥ इति द्वितीय पर्यायः ॥

[३] तृतीय पर्यायः

गं ध्यायेद् देवीं पराम्बां सकल-जग-मयीं प्रकृति-चित्स्वरूपाम् ।
व्याप्तां त्रैलोक्य-नादां निखिल-भय-हरां धारिणीं काल-चक्रम् ॥

ब्रह्मा-विष्णु-महेशां स्थिति-प्रलय-करामुत्पत्ति-रूपमेकाम् ।
विश्वाधारामरूपामभय-वर-करामीश्वरीं त्वां नमामि ॥

आदि - माया आदि - शक्तिरीश्वरी आत्म-रूपिणी ।
कृपा-युक्ता कृपा-चित्ता काल - रूपा कृपाश्रया ।।

स्वरूपा ख-रूपा च ख-शक्तिः खग-पालिनी ।
आत्म-विद्या इडा शक्तिरनाद्यनु-रूपिणी ।।

गुरु-रूपा गुणाधीशा निर्गुणा च गुणाश्रया ।
घन-रूपा घन-शाया घातिनी घात-नाशिनी ।।

चिन्मया चित्कला चित्ता चिद्रूपा च चराचरा ।
चिच्छक्तिश्च चिदाकाशा चिदम्बा चेतना तथा ।।

चित्ताकर्षा चिदानन्दा त्वचिन्त्या चित्त-चालका ।
जगदम्बा जग-माया जग-रूपा जगाश्रया ।।

जग-कर्त्री जग - हन्त्री जननी जग - मोहिनी ।
तत्व-रूपा तत्व-वेत्ता तारिणी तत्व-बोधिका ।।

त्रिगुणा तम-रूपा च तान्त्रिका तीर्थ-रूपिणी ।
धर्माधीशा धर्म-कीर्तिर्धारिणी धर्म-रूपिणी ।।

धरा-रूपा धराधीशा धनदा धन-वर्द्धिनी ।
निरामया निराभासा निर्मला च निराकृती ।।

निर्लोभा निरहङ्कारा निश्चिता च निरञ्जना ।
परा-माया परा-वाचा प्रकृतिः परमेश्वरी ।।

पिङ्गला प्रणव-रूपा च परा-विद्या प्रबोधिनी ।
बहु-कान्ता बहु-शुद्धा बोधिनी बुद्धि-दायिनी ।
भक्ति - प्रिया भक्ति - दात्री भ्रामरी भक्त - वत्सला ।।

भामिनी भव-रूपा च भय-कृद् भय - नाशिनी ।
महा-माया महा-शक्तिः मोहिनी मन्त्र-रूपिणी ।।

लक्ष्मी लक्ष्य - रूपा च विश्वा च विश्व-मोहिनी ।
शान्ता सुषुम्णा सत्त्वा च सोहं हंसः नमो नमः ॥

ऐं ठं ठं ठं; क्लं ठं ठं ठं; एं ठं ठं ठं; ईं ठं ठं ठं; ह्रीं ठं ठं ठं; क्लीं ठं ठं ठं; सं ठं ठं ठं; कं ठं ठं ठं; हं ठं ठं ठं; लं ठं ठं ठं; ह्रीं ठं ठं ठं; ह्रीं ठं ठं ठं; सौः ठं ठं ठं; सं ठं ठं ठं; कं ठं ठं ठं; लं ठं ठं ठं ह्रीं ठं ठं ठं ।

ॐ ह्रीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि - दोष - प्रशान्तिदः ॥
ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्-धियां ।
निर्वैरिता प्रजायन्ते सम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ॥

॥ इति तृतीय पर्यायः ॥

[४] चतुर्थं पर्यायः

लं त्रिभुवन-वपुरेकं योगिभिर्दृष्टमुच्चै—
स्त्रिगुणमपि गुणेभ्यो मत्परं प्राहुराख्यः ॥
तदहमहं मन्त्रश्च ज्ञान-मोक्ष - स्वरूपम् ।
दिशि दिशि बहु-शक्तिर्ब्रह्म सम्पादयामि ॥
प्रकृति - पुरुष - भिन्नं नास्ति नास्ति कदाचन ।
परा-पराणां प्रसादं सच्चिदानन्द-लक्षणम् ॥
नोदेति नास्ति मध्येति न वृद्धि नास्ति तत्क्षयम् ।
परमा परमेशानं प्रकृतिः परमेश्वर ॥

कर-पादौ दशाक्षादि-रहितं चिन्मयं कुरु।
कामेश्वरी महा-शक्तिः कामेश्वर-सदाशिवां ।।
अनन्तमितभा-रूपं सत्ता-मात्रेण गोचरम् ।
ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्नं ज्ञान-रूपं च ज्ञानदम् ।।
श्रीविद्या ब्रह्म-विद्या च व्याप्तं येन चराचरं।
निर्द्वन्द्वा नित्य-सन्तुष्टा निर्मोहा निरुपाधिका ।।
कामेश्वरी मनोऽभीष्ट - कामेश्वर-स्वरूपिणी।
नमस्तेऽनन्त - रूपायै प्रसीद सु-प्रसीद मे ।।

श्रीं श्रीं श्रीं; ह्लीं ह्लीं ह्लीं; क्लीं क्लीं क्लीं; ऐं ऐं ऐं; सौः सौः सौः ॐ ॐ ॐ; ह्लीं ह्लीं ह्लीं; श्रीं श्रीं श्रीं; कं कं कं; एं एं एं; ईं ईं ईं, लं लं लं; ह्लीं ह्लीं ह्लीं; हं हं हं; सं सं सं; कं कं कं; हं हं हं; लं लं लं; ह्लीं ह्लीं ह्लीं; सं सं सं; कं कं कं; लं लं लं; ह्लीं ह्लीं ह्लीं; सौः सौः सौः; ऐं ऐं ऐं; क्लीं क्लीं क्लीं; ह्लीं ह्लीं ह्लीं; श्रीं श्रीं श्रीं; प्रसीद प्रसीद, मम मनो ईप्सितं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा।

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम्।
अविवादो भवेदत्र कलि-दोष - प्रशान्तिदः ।।
ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग् - धियां।
निर्वैरिता प्रजायन्ते सम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ।।

।। इति चतुर्थं पर्यायः ।।

फल-श्रुतिः

वाञ्छा-कल्पलतायास्तु न च होमो न च तर्पणम् ।
एक-वारं जगद्वश्यं द्विरावृत्या महाश्रया ।।

त्रिरावृत्या कविर्भूत्वा तुर्यावृत्ति स्वयं शिवा ।
पञ्चावृत्या भवेत्सिद्धो नात्र त्वन्य-विचारणा ।।

निशान्ते यः प्रति-दिनं दश-वारं पठेद्यदि ।
सर्वान् कामानवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।।

जप-समर्पण

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं गृहणास्मत्-कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादात् महेश्वरि !

परमेश्वर-परमेश्वरी-प्रीत्यर्थं वांछा-कल्पलताया दशावृत्ति-पठनाख्येन कर्मणाख्येन श्रीभगवान् परमेश्वरः प्रीयतामस्तु ।।
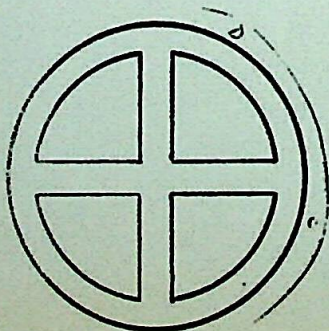
श्रीवांछा-कल्पलता
का
प्रचलित प्रयोग

श्रीवाञ्छा-कल्पलता का मन्त्रोद्धार

तारं वाचं श्रियं मायां वाक् च काम - वराहकम् ।
गणेश-बीजं गुग्गुल्लं ह्रीं श्रियः पञ्च-दशाक्षरी ।। १
(ॐ ऐं श्रीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः ग ग्लौं गणेशाय ह्रीं श्रीं)

ऐं क्लीं सौः कथितं बीजं त्रितयं त्रैपुरं तथा ।
पूर्वानुषङ्ग-योगेन त्रिंशद्भिः कथितोऽक्षरैः ।। २

पर्यायेष्वनुषङ्गाभ्यां चतुर्ष्वपि पठेद् द्विजः ।
ऋचो यदद्य कच्चाद्या अनुलोम्येन षट् पठेत् ।। ३

ता एव प्रति - लोम्येन पुनः षष्ठीं विना पठेत् ।
एवमेकादशर्चं स्युरनुषङ्ग - द्वयान्विता ।। ४

गं क्षिप्र - प्रसादनाद् गणपतये ततः परं ।
योजयेद् वर-वरद पाश-मायांकुशं ततः ।। ५

सर्व-जनं मे वशमानय स्वस्ति वै पदम् ।
सौः क्लीं ऐमिति चान्ते स्यादनुषङ्गोऽयमुत्तरम् ।। ६

ऋक्षूत्तरानुषङ्गोऽयं भवेत् षट्-त्रिंशदक्षरैः ।
पूर्वोत्तरानुषङ्गाभ्यां पठेदेकादश - ऋचः ।। ७

यदद्य कच्च तत्सवितुस्त्र्यम्बकं जात-वेदसे ।
समानो मन्त्रमित्येताः प्रति-लोमे दशा भवेत् ।। ८

षष्ठीं तु प्रति-पर्याये भिन्नाभिन्नमुदीरयेत् ।
संसमिद्युवसे चाद्ये सङ्गच्छध्वं द्वितीयके ।। ९

समानो मन्त्रस्तृतीये समानीवश्चतुर्थके ।
एकादशं पठित्वेवमृचोऽथ द्वादशं पठेत् ।। १०

द्वादश्यो भिन्न-भिन्ना स्युः पर्यायेषु चतुर्ष्वपि ।
गणानां त्वा गणपति अग्ने मन्युमतः परम् ।। ११

योममाग्ने तृतीयस्थां यजैष्माद्या चतुर्थके ।
तत्र आद्ये तु भद्रन्नो मरुतामोजसे ततः ।। १२

तृतीये इन्द्रो विश्वस्य चान्ते तु शन्नो वै वदेत् ।
ततः पठेदों ह्लीं वं ठं चामृत-रुद्राय वै ततः ।। १३

पाश-मायांकुशे कृत्वा प्रतिकूलं मे इत्यतः ।
दमयन्ती - नलाभ्यामित्यृग्-द्वयं च ततः पठेत् ।। १४

ॐ ह्लीं वं ठमित्यादि चतुर्थे वं सं भवेत् ।
एवं पंचमी षष्ठी सप्तमी च तृतीयके ।। १५

एवं कल्पलताख्योपस्थानस्यैष क्रमो भवेत् ।
प्रयोग-पारिजाताख्यं अथर्वण - विधीरितः ।। १६

श्रीवाञ्छा-कल्पलता का प्रचलित प्रयोग

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीवाञ्छा - कल्पलता - मन्त्रस्य श्री-आनन्द-भैरवागस्त्याङ्गिरस-कश्यप-वशिष्ठ - विश्वामित्र-सम्वाद-ऋषयः, देवी-गायत्री-निचृद्-गायत्री-त्रिपदा-गायत्र्यनुष्टुप्-नाना-विधानि छन्दांसि. श्रीमहागणपति-ललिता - सम्वादाग्न्यमृत-रुद्रा देवता, श्रीं बीजं, ह्लीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, श्रीपरा - विद्या-प्रसाद-सिद्धयर्थं वाञ्छितार्थ-प्राप्तये च जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्री आनन्द - भैरवागस्त्याङ्गिरस-कश्यप-वशिष्ठ-विश्वामित्र - सम्वाद - ऋषिभ्यो नमः शिरसि, देवी-गायत्री-नृचद्-गायत्री-त्रिपदा-गायत्र्यनुष्टुप्-छन्दोभ्यो नमः मुखे, श्रीमहा-गणपति - ललिता-सम्वादाग्न्यमृत - रुद्र-देवताभ्यो नमः हृदि, श्रीं बीजाय नमः गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः नाभौ, क्लीं कीलकाय नमः पादयोः, श्रीपरा-विद्या-प्रसाद-सिद्धयर्थं वाञ्छितार्थ-प्राप्तये च जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

कर-न्यास—

ॐ-ऐंक्लींसौःह्रीं सर्वज्ञतायै ह्रांगां ब्रह्मात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ-५ नित्य - तृप्तायै ह्रींगीं विश्वात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ-५ अनादि-बोधितायै ह्रूंगूं रुद्रात्मने मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ-५ स्वतन्त्रतायै ह्रैंगैं परमेश्वरात्मने अनामिकाभ्यां हुं। ॐ-५ नित्यमलुप्तायै ह्रौंगौं सदा-शिवात्मने कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ-५ अनन्तायै ह्रःगः सर्वात्मने करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

अङ्ग-न्यास—

ॐ-ऐंक्लींसौःह्रीं सर्वज्ञतायै ह्रांगां ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः। ॐ-५ नित्य-तृप्तायै ह्रींगीं विश्वात्मने शिरसे स्वाहा। ॐ-५ अनादि-बोधितायै ह्रूंगूं रुद्रात्मने शिखायै वषट्। ॐ-५ स्वतन्त्रतायै ह्रैंगैं परमेश्वरात्मने कवचाय हुं। ॐ-५ नित्यमलुप्तायै ह्रौंगौं सदा-शिवात्मने नेत्र-त्रयाय वौषट्। ॐ-५ अनन्तायै ह्रःगः सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

ध्यानं—हेमाद्रौ हेम-पीठ-स्थितममरगणैरीड्यमानां च राजन्,
पुष्पेक्षुश्चाप-पाशांकुश-कर-कमलां रम्य-केशातिरक्ताम् ।
दिक्षूद्यद्भिश्चतुर्भिर्मणि-मय-कलशैः यन्त्र-शक्त्यान्वित-स्वैः,
वृक्षैः क्लृप्ताभिषेकां भजति भगवतीं भूतिदामन्त्य-यामे ॥१

बीजापूर-गदेक्षु-कार्मुक-रुचा चक्राब्ज-पाशोत्पला,
व्रीह्यग्र-स्व-विषाण-रत्न- कलशैर्प्रोद्यत् - कराम्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया स्व-पद्म-करया श्लिष्टो ज्वलद्-भूषया,
विश्वोत्पत्ति-विपत्ति-संस्थिति-करो विघ्नो विशिष्टार्थदः ॥२

धवल-नलिन-राजच्चन्द्र - मध्ये निषण्णम्,
स्व-कर-कलित-पाशं साभयं सांकुशं च ।
अमृत - वपुषमिन्दु - क्षीर - वर्णं त्रिनेत्रम्,
प्रणमित-सुर-वृन्दं दिक्षु सम्वादयन्तम् ॥३

स्फुटित-नलिन-संस्थं मौलि - बद्धेन्दु-रेखा-
गलदमृत-रसार्द्रं चन्द्र-वह्न्यर्क-नेत्रम् ।
स्व-कर-कलित - मुद्रा-वेद - पाशाक्ष-मालं,
स्फटिक-रजत-मुक्ता-गौरमीशं नमामि ॥४

पञ्चोपचार-मानस-पूजनम्—

(१) श्रीमन्महा - त्रिपुरसुन्दरी-महा - गणपति - सम्वादान्यमृत-रुद्रेभ्यः लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः—अंगुष्ठ-कनिष्ठाभ्यां ।

(२) श्रीमन्महा०⋯रुद्रेभ्यः हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः—तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां ।

(३) श्रीमन्महा०⋯रुद्रेभ्यः यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः—अंगुष्ठ-तर्जनीभ्यां ।

(४) श्रीमन्महा०···रुद्रेभ्यः रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः—अंगुष्ठ-मध्यमाभ्यां।

(५) श्रीमन्महा०····रुद्रेभ्यः वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः—अंगुष्ठानामिकाभ्यां।

इस प्रकार मानस-पूजन कर श्रीगुरु, इष्ट-देवता और आत्मा के ऐक्य-भाव की भावना कर रात्रि के अन्तिम प्रहर में सूर्योदय में पूर्वाभिमुख होकर तीन मन्त्रों का दस वार जप करे—

१—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईं।

२—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परो रजसे सावदोम्।

३—ॐ ऐं ह्रीं हसकल हसकहल सकलह्रीं।

अव प्रथम पर्याय के मन्त्रों का जप करे। यथा—

(१) प्रथम पर्यायः

१—ॐऐंश्रींह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐंक्लींसौः यदद्य कचच वृत्र-हन्नुदगा अभि-सूर्यं सर्वं तदिन्द्र ते वशे गं क्षिप्र-प्रसादनाय गणपतये वर-वरद आं ह्रीं क्रों सर्व - जनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं ॐ अविघ्नमस्तु।

२—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ तत-सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् गं क्षिप्र-प्रसादनाय गणपत०······स्वाहा सौः-४ शुभानि मेऽस्तु।

३—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि - वर्द्धनं, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय. माऽमृतात् गं क्षिप्र०······स्वाहा सौः-४ प्रतिकूलं मे नश्यतु।

४—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ जात-वेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः, स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः गं क्षिप्र० ......स्वाहा सौः-४ अनुकूलं मे अस्तु।

५—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषां, समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि गं क्षिप्र० ......स्वाहा सौः-४ सर्व-रक्षा मे अस्तु।

६—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ स ᳫ समिद्युरसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर गं क्षिप्र०......स्वाहा सौः-४ सर्व-सम्पत्-समृद्धिरस्तु।

७—ॐ ४ लं क्लीं ग्लौ गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषां, समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि गं क्षिप्र० ...स्वाहा सौः-४ अविघ्नमस्तु।

८—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ जात-वेदसे सुनवाम सोम मराती यतो निदहाति वेदः सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः गं क्षिप्र०... स्वाहा सौः-४ सर्व-सिद्धिरस्तु।

९—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनं, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् गं क्षिप्र०....स्वाहा सौः-४ परापरा सिद्ध-विद्याऽस्तु।

१०—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ तत्-सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् गं क्षिप्र०……स्वाहा सौः-४ श्रीविघ्न-नायको प्रसन्नोऽस्तु ।

११—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ यदद्य कच्च वृत्र-हन्नुदगा अभि-सूर्य सर्वं तदिन्द्र ते वशे गं क्षिप्र० …स्वाहा सौः-४ अष्ट-सिद्धयो प्रसन्नाऽस्तु ।

१२—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमं ज्येष्ठ-राजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद-सादनं गं क्षिप्र० …स्वाहा सौः-४ सिद्धा सरस्वती मेऽस्तु ।

१३—ॐ भूर्भुवः स्वः भूः भद्रं नोऽपि वातय मनः ॐ ह्रीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वश-मानय स्वाहा ।

ॐ दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि-दोष-प्रशान्तिदः ।।
ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्-धियां ।
निर्वैरिता च जायेत सम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ।।

।। इति प्रथम पर्यायः ।।

(२) द्वितीय पर्यायः

१—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ यदद्य कच्च…ते वशे गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

२—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ तत्सवितुर्वरेण्यं…प्रचोदयात् गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

३—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ त्र्यम्बकं···मामृतात् गं क्षिप्र०····स्वाहा सौः-४ ।

४—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ जात-वेदसे···दुरितात्याग्निः गं क्षिप्र०···स्वाहा सौः-४ ।

५—ॐ-४ लं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानो···जुहोमि गं क्षिप्र०···स्वाहा सौः-४ ।

६—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानी व आकूति समाना हृदयानि वः, समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति गं क्षिप्र०···स्वाहा सौः-४ ।

७—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानी···जुहोमि गं क्षिप्र०···स्वाहा सौः-४ ।

८—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ जात-वेदसे···दुरितात्यग्निः गं क्षिप्र०···स्वाहा सौः-४ ।

९—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ त्र्यम्बकं···मामृतात् गं क्षिप्र०····स्वाहा सौः-४ ।

१०—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ तत्सवितुर्वरेण्यं ··प्रचोदयात् गं क्षिप्र०···स्वाहा सौः-४ ।

११—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ यदद्य कच्च···ते वशे गं क्षिप्र०····स्वाहा सौः-४ ।

१२—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ अजैष्माद्यासनाय च भूमानागसो वयं, जाग्रत् - स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु गं क्षिप्र०··· स्वाहा सौः-४ ।

१३–ॐ-४ ह्लीं भूर्भुवः स्वः शन्नो अस्तु सभीते द्वि-पदे शं चतुष्पदे, ॐ ह्लीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्लीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्य-त्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि - दोष - प्रशान्तिदः ।।
ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग् - धियाम् ।
निर्वैरिता च जायेत सम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ।।

।। इति द्वितीय पर्यायः ।।

तृतीय पर्यायः

१–ॐ-४ ऐं-३ यदद्य कच्च ते ··· वशे गं क्षिप्र० सौः-४ ।
२– ,, ,, तत्सवितु० ··· प्रचोदयात् ,, ,, ।
३– ,, ,, त्र्यम्बकं ··· मामृतात् ,, ,, ।
४– ,, ,, जात-वेदसे ··· दुरितात्यग्निः ,, ,, ।
५– ,, ,, समानो ··· जुहोमि ,, ,, ।
६– ,, ,, समानो ··· जुहोमि ,, ,, ।
७– ,, ,, समानो ··· जुहोमि ,, ,, ।
८– ,, ,, जात-वेदसे ··· दुरितात्यग्निः ,, ,, ।
९– ,, ,, त्र्यम्बकं ··· मामृतात् ,, ,, ।
१०– ,, ,, तत्सवितु० ··· प्रचोदयात् ,, ,, ।
११– ,, ,, यदद्य कच्च ··· ते वशे ,, ,, ।
१२– ,, ,, यो मामग्ने भागिनं सन्तं यथा-भागं चिकीर्षति, अभागमग्ने तं कुरु मामग्ने भागिनं कुरु स्वाहा गं क्षिप्र० ··· सौः-४ ।

१३—ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ स्वः इन्द्रो विश्वस्य राजति ॐ ह्रीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि - दोष - प्रशान्तिदः ।।
ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग् - धियाम् ।
निर्वैरिता च जायेत सम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ।।

।। इति तृतीय पर्यायः ।।

चतुर्थ पर्यायः

१—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ यदद्य कच्च…ते वशे गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

२—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ तत्सवितुर्वरेण्यं…प्रचोदयात् गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

३—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ त्र्यम्बकं…मामृतात् गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

४—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ जात-वेदसे…दुरितात्यग्निः गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

५—ॐ-४ लं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानो …जुहोमि गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

६—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ सङ्गच्छध्वं सम्वदध्वं सङ्केतानां विजानता देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

७—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्रीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ समानो…जुहोमि गं क्षिप्र०…स्वाहा सौः-४ ।

८—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्लीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ जात-वेदसे⋯दुरितात्यग्निः गं क्षिप्र०⋯स्वाहा सौः-४ ।

९—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्लीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ त्र्यम्बकं⋯मामृतात् गं क्षिप्र०⋯स्वाहा सौः-४ ।

१०—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्लीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ तत्सवितुर्वरेण्यं⋯प्रचोदयात् गं क्षिप्र०⋯स्वाहा सौः-४ ।

११—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्लीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ यदद्य कच्च⋯ते वशे गं क्षिप्र०⋯स्वाहा सौः-४ ।

१२—ॐ-४ लं क्लीं ग्लौं गं गुग्गुल ह्लीं क-५ ह-६ स-४ ऐं-३ अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परिपाहि नस्त्वं प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते मैषां चित्तं प्रबुधां विनेशत् गं क्षिप्र०⋯ स्वाहा सौः-४ ।

१३—ॐ भूर्भुवः स्वः भुवः मरुतामोजसे स्वाहा ॐ ह्लीं वं ठं अमृत-रुद्राय आं ह्लीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

ॐ दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलि - दोष - प्रशान्तिदः ।।
ऐक-मत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्-धियाम् ।
निर्वैरिता च जायेत मम्वादाग्ने ! प्रसीद मे ।।

।। इति चतुर्थं पर्यायः ।।

जप-समर्पण

गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणाऽस्मत्-कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु देवेशि ! त्वत्-प्रसादान्मयि स्थिरा ।।

परिशिष्ट

१ पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी
द्वारा
सम्पादित प्रयोग

'श्रीवांछा-कल्पलता' के जो दो प्रयोग इस सङ्कलन में दिए गए हैं, उनमें से प्रथम 'अनूठा' प्रयोग तो पहली बार प्रकाश में आ रहा है और उसकी एक ही पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है किन्तु द्वितीय 'प्रचलित' प्रयोग अनेक विद्वानों द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है। पृष्ठ १५ से २० तक के पृष्ठों में जो प्रचलित प्रयोग प्रकाशित किया गया है, वह गुप्तावतार बाबा श्री मोतीलाल मेहता कृत 'श्री-कल्पद्रुमः' ग्रन्थ के अप्रकाशित षष्ठ भाग से उद्धृत किया गया है।

सनातन-धर्म के सर्व-मान्य धर्माचार्य परम पूज्य स्वामी श्री हरिहरानन्द जी सरस्वती ने, जो 'श्री करपात्र स्वामी' के नाम से विश्व-विख्यात हैं, 'श्रीविद्या-रत्नाकरः' नामक एक ग्रन्थ की संस्कृत में रचना की है। यह ग्रन्थ आजकल अप्राप्य है। इसके परिशिष्ट में 'वांछा-कल्पलता' शीर्षक से उक्त प्रयोग प्रकाशित किया गया है। गुप्तावतार बाबा श्री द्वारा सङ्कलित प्रयोग से तुलना करने पर कुछ विशेष अन्तर ज्ञात होते हैं। यथा—प्रयोग के प्रारम्भ में निम्न निर्देश मिलता है—

'श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीगणेशाय नमः। श्रीक्षेत्रपालाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीमत्-त्रिपुरसुन्दर्यै नमः। मूलमुच्चार्य, ताल-त्रयं कृत्वा, मूलेन प्राणायाम-त्रयं कृत्वा।'

अर्थात् प्रयोग के प्रारम्भ में सर्वश्री गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठि गुरु को नमस्कार कर सर्वश्री गणेश, क्षेत्रपाल, सरस्वती और श्रीमत्-त्रिपुरसुन्दरी को नमन करे। फिर मूल-मन्त्र का उच्चारण कर, तीन बार ताली बजाकर, मूल-मन्त्र से तीन बार प्राणायाम करे। इसके बाद विनियोग निम्न प्रकार किया गया है—

'ॐ अस्य श्रीवाञ्छा-कल्पलता-विद्या-गणेशस्य मनोर्नाना-सूक्त-समूहस्य आनन्द-भैरव-गणकाङ्गिरस-कश्यप-वशिष्ठ-विश्वा-मित्र-सम्वनना ऋषयः, देवी-गायत्री-निचृद्-गायत्री-पंक्त्यनुष्टुप्-निचृत्-त्रिष्टुब्-जगत्यश्छन्दांसि, श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी-गणपति-सम्वादाग्न्यमृत-रुद्रा देवताः, श्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, मम श्रीमहागणपति-महात्रिपुरसुन्दरी-सम्वादाग्न्यमृत-रुद्र-प्रसाद-वाञ्छितार्थ-फल-प्रसिद्धये वाञ्छा-कल्पलतोपस्थाने विनियोगः।'

इस प्रकार विनियोग-पूर्वक सङ्कल्प करने का निर्देश किया गया है। विनियोग के बाद ऋष्यादि-न्यास का विधान दिया गया है। यथा—

'आनन्दभैरव-गणकाङ्गि-रस-कश्यप - वशिष्ठ - विश्वामित्र-सम्वनन-ऋषिभ्यो नमः शिरसि। देवी - गायत्री - निचृद्-गायत्री-पंक्त्यनुष्टुप्-निचृत् - त्रिष्टुब् - जगती - छन्दोभ्यो नमः मुखे। श्रीमन्महा - त्रिपुरसुन्दरी - गणपति-सम्वादाग्न्यमृत-रुद्र-देवताभ्यो नमः हृदये। श्रीं बीजाय नमः नाभौ। ह्रीं शक्तये नमः गुह्ये। क्लीं कीलकाय नमः आधारे।'

इस प्रकार ऋष्यादि-न्यास कर मूल-मन्त्र से व्यापक न्यास करने का निर्देश किया गया है। इसके बाद त्रि-चत्वारिंशद् (४३) अक्षरों का निम्न मन्त्र उद्धृत किया गया है—

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं क-५ गणपतये ह-६ वर-वरद स-४ सर्व-जनं मे वशमानय स्वाहा।'

कर-षडङ्ग-न्यास की विधि निम्न प्रकार दी गई है—

'ऐं क्लीं सौः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ह्रीं सर्वज्ञायै ह्रां गां ब्रह्मात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः। ऐं-११ ह्रीं नित्य-तृप्तायै ह्रीं गीं विष्ण्वात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा। ऐं-११ ह्रीं अनादि-बोधितायै ह्रूं गूं रुद्रात्मने मध्यमाभ्यां वषट्। ऐं-११ ह्रीं स्वतन्त्रायै ह्रैं गैं ईश्वरात्मने अनामिकाभ्यां हुं। ऐं-११ ह्रीं नित्यमलुप्तायै ह्रौं गौं सदाशिवात्मने कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ऐं-१० ह्रीं अनन्तायै ह्रः गः सर्वात्मने करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

ऐं क्लीं सौः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ह्रीं सर्वज्ञायै ह्रां गां ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः। ऐं-११ ह्रीं नित्य-तृप्तायै ह्रीं गीं विष्ण्वात्मने शिरसे स्वाहा। ऐं-११ ह्रीं अनादि-बोधितायै ह्रूं गूं रुद्रात्मने शिखायै वषट्। ऐं-११ ह्रीं स्वतन्त्रायै ह्रैं गैं ईश्वरात्मने कवचाय हुं। ऐं-ह्रीं नित्यमलुप्तायै ह्रौं गौं सदा-शिवात्मने नेत्र-त्रयाय वौषट्। ऐं-अनन्तायै ह्रः गः सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

इस प्रकार न्यास कर पुनः मूल-मन्त्र से तीन वार व्यापक न्यास कर ध्यान करने का निर्देश किया गया है। पृष्ठ १५ पर जो चार ध्यान गुप्तावतार बाबा श्री की पाण्डु-लिपि के अनुसार दिए गए हैं, वही ध्यान स्वामी करपात्री जी द्वारा उद्धृत किये गये हैं। तीन ध्यानों में कुछ पाठान्तर हैं, चौथे ध्यान में कोई पाठान्तर नहीं है।

स्वामी जी ने चौथे ध्यान की चौथी पंक्ति में उल्लिखित 'स्व-कर-कलित-मुद्रा' के सम्बन्ध में टिप्पणी देते हुए 'मुद्रा' को

'ज्ञान-मुद्रा' स्पष्ट किया है। उक्त चार ध्यानों के वाद स्वामी जी ने मुद्रा-प्रदर्शन का निर्देश किया है। तदनन्तर पञ्चोपचार-मानस-पूजन का विधान किया है, जो पृष्ठ २२ पर दिया गया है। पञ्चोपचार देने के वाद निम्न मन्त्र से 'सर्वात्मक सर्वोपचार' भी देने का स्वामी जी ने निर्देश किया है। यथा—

'श्रीमन्महात्रिपुर-सुन्दरी-महागणपति-सम्वादाग्न्यमृत-रुद्रेभ्यः सं सर्वोपचारं समर्पयामि नमः—संहृताभिः सर्वांगुलिभिः।'

इसके वाद का, चार पर्यायों के मन्त्रों के जप का, विधान प्रायः समान ही है। केवल पृष्ठ २३-२९ पर दिए मन्त्रों की प्रथम पंक्ति में 'गुग्गुल ह्लौं' के स्थान पर 'गुगुरीं' दिया है, जिससे मन्त्राक्षर-संख्या ३० के स्थान पर २९ हो जाती है। पृष्ठ १९ पर प्रकाशित मन्त्रोद्धार से स्पष्ट है कि स्वामी जी द्वारा उद्धृत मन्त्र सन्देहास्पद है।

गुप्तावतार बाबा श्री ने प्रथम पर्याय के मन्त्रों के अन्त में "१ अविघ्नमस्तु, २ शुभानि मे अस्तु, ३ प्रतिकूलं मे अस्तु, ५ सर्वं रक्षा मे अस्तु, ६ सर्व-सम्पत्-समृद्धिरस्तु, ७ अविघ्नमस्तु, ८ सर्व-सिद्धिरस्तु, ९ परापर - सिद्ध - विद्यास्तु, १० श्रीविघ्न-नायको प्रसन्नोऽस्तु, ११ अष्ट - सिद्धयो प्रसन्नाऽस्तु, १२ सिद्धा सरस्वती मे अस्तु"—ये जो बारह उद्बोधक वचन दिए हैं, अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होते।

इसी प्रकार चारों पर्यायों के १३ वें मन्त्र के आदि में गुप्तावतार वावा श्री की पाण्डुलिपि में 'ॐ भूर्भुवः स्वः' मिलता है, जो स्वामी जी के पाठ में नहीं है। इसी मन्त्र के अन्त में स्वामी जी के पाठ में 'वशमानय वशमानय स्वाहा' मिलता है, जब कि गुप्तावतार बाबा श्री ने केवल 'वशमानय स्वाहा' ही लिखा है।

पर्यायों के अन्त में गुप्तावतार बाबा श्री ने 'ॐ दमयन्ती-नलाभ्यां०' आदि श्लोक दिया है, जब कि स्वामी जी ने प्रणव छोड़कर केवल 'दमयन्ती-नलाभ्यां०' इत्यादि श्लोक दिया है। चौथे पर्याय की समाप्ति के बाद स्वामी जी ने निर्देश किया है कि इस प्रकार जप कर जप का समर्पण निम्न श्लोक से करे—

गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री त्वं, गृहाणास्मत्-कृतं जपम्।
सिद्धि - र्भवतु देवेशि, त्वत् - प्रसादान्महेश्वरि ॥

इस प्रकार प्रति-दिन निशा के अन्त काल में चार बार पाठ करने का निर्देश स्वामी जी ने किया है। इससे 'सर्वैश्वर्यं भवति सर्व-वेदान्त-फलमश्नुते' अर्थात् साधक को सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है और उसे वेदान्त का फल मिलता है।

स्वामी जी ने अपने प्रयोग के अन्त में 'कुमार - संहिता' के ६ श्लोक, तन्त्रान्तर के २॥ श्लोक और 'प्रयोग-पारिजात' के तीन श्लोक उद्धृत किए हैं, जिन्हें 'परिचय' के पृष्ठ ८-९ पर अर्थ-सहित इस पुस्तिका में प्रकाशित किया गया है।

गुप्तावतार बाबा श्री ने अपनी पाण्डुलिपि में प्रयोग के प्रारम्भ में 'श्रीवांछा-कल्पलता' का मन्त्रोद्धार दिया है, जो इस पुस्तिका के पृष्ठ १९ पर प्रकाशित है। प्रयोग के अन्त में बाबा श्री द्वारा निम्न श्लोक उद्धृत किए गए हैं—

निशान्ते प्रति-दिनं चतुर्वारं पठेद्यदि,
सर्वैश्वर्यं भवेत् सर्व - वेद-पाठ-फलं लभेत्।
वांछा-कल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम्,
स्मरणादेव विद्यायाः मुक्तो भवति पूरुषः ॥
आवर्तन-त्रये लक्ष्मीं पञ्चावृत्तौ शिवादीनां,
विष्णवादीनां च देवानां दर्शने शक्ति-वान् भवेत्।

लक्षावृत्तौ सार्वभौमः दिव्यौघो प्रजायते ।
नार्थवादोऽथर्वणस्य वशिष्ठ - वचनं यथा ॥
इत्येतत् कथितं दिव्यं भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ।
श्रीआथर्वणे सौभाग्य-काण्डे वांछा-कल्पतरुम् ॥

२ आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री
द्वारा
शोधित प्रयोग

शास्त्री जी की 'वांछा - कल्पलता' नामक पुस्तक में जो प्रयोग की विधि दी है, वह गुप्तावतार बाबा श्री के प्रयोग से अनेक स्थलों पर सर्वथा भिन्न है। अधिक विस्तृत भी है। शास्त्री जी ने पर्यायों के मन्त्र में 'गुग्गुल ह्रीं' के स्थान पर 'गुगलरीं श्रीं' पद को मान्यता दी है। साथ ही पाद-टिप्पणी में 'गुगलरीं' के दो पाठान्तर भी निर्दिष्ट किए हैं—१ 'गुग्गुरीं' और २ 'गुगरीं'। इसी प्रकार पर्यायों के अन्त में अमृत-रुद्र का मन्त्र भी बहुत कुछ भिन्न रूप में दिया गया है। यथा—

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं जूं सः वं ठं अमृत - रुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे वशतु, अनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा।

शास्त्री जी द्वारा सम्पादित उक्त पुस्तक में श्री ढुंढिराज-विरचित एवं मूल - वाक्यानुसारी प्रयोग भी अलग-अलग दिए गए हैं।

३ गुप्तावतार बाबा श्री
द्वारा
'गुग्गुल' पद का उद्धार

पृष्ठ १६ पर प्रकाशित 'श्रीवांछा-कल्पलता - मन्त्रोद्धार' प्रथम श्लोक के आगे गुप्तावतार बावा श्री ने पञ्च - दशाक्षरी विद्या का उद्धार निम्न प्रकार लिखा है—

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः गं ग्लौं गणेशाय ह्रीं श्रीं ।।१५।।

इस उद्धार से स्पष्ट होता है कि मन्त्रोद्धार-श्लोक में 'गुग्गल' पद 'ग्लौं गणेशाय' का वाचक है।

प्रश्नोत्तरी

प्रस्तुत कल्याणकारी प्रयोग का प्रकाशन 'चण्डी' पत्रिका में होने पर अनेक साधकों ने इस प्रयोग के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासाएँ कीं, जिनका समाधान यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि इससे इस प्रयोग के करनेवालों को विशेष सुविधा होगी—

१ 'श्री वाञ्छा-कल्पलता' प्रयोग को आदि से अन्त तक पूरा-पूरा ही करना चाहिये या उसमें कुछ कमी की जा सकती है ?

प्रयोग को आदि से अन्त तक निर्दिष्ट नियमानुसार करना ही उत्तम है, किन्तु यदि वैसा करना सम्भव न हो, तो निम्न विकल्पों का सहारा लिया जा सकता है—

१ (क) 'अनूठे प्रयोग' की फल-श्रुति के अनुसार प्रति-दिन रात्रि के अन्त में अर्थात् ब्राह्म-मुहूर्त में प्रयोग के चारों पर्यायों का दस वार पाठ करने से पाठ करनेवालों की सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। इस प्रयोग में एक तो वैदिक मन्त्र नहीं हैं, दूसरे जो स्तुतियाँ दी हैं, वे सुबोध और प्रभाव-शालिनी हैं। 'विनियोग' को केवल पहले पाठ में करना है, शेष पाठों (आवृत्तियों) में उसे नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार 'फल-श्रुति' को केवल पहले और दसवें पाठ में पढ़ना है। इस प्रकार यह प्रयोग स्वयं ही काफी छोटा है। फिर 'दस पाठ' सदा करने की आवश्यकता नहीं है, केवल एक मास तक नित्य दस पाठ करे, जिससे पूरा

प्रयोग कण्ठस्थ होकर आत्म-सात् हो जायगा। तदनन्तर जैसा कि 'फल-श्रुति' में निर्देश है, जैसी छोटी-बड़ी कामना हो, उसी के अनुरूप प्रति-दिन केवल एक, तीन या पाँच पाठ करने से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है।

(ख) इस 'अनूठे प्रयोग' को और संक्षिप्त रूप में करना हो, तो ऐसा भी कर सकते हैं कि प्रत्येक पर्याय में जो बीजात्मक मन्त्र दिये हैं, केवल उन्हें ही एक से अधिक बार जपे, शेष स्तुतियों का पाठ केवल एक-एक ही बार करे।

२ (क) 'प्रचलित प्रयोग' निस्सन्देह बड़ा है और वैदिक मन्त्रों के होने से कुछ जटिल भी है किन्तु उसमें भी विनियोग, न्यास, ध्यान, मानस-पूजा और प्रथम तीन मन्त्रों का जप केवल पहले पाठ में करना है, शेष पाठों (आवृत्तियों) में उन्हें नहीं करना चाहिये। जप-समर्पण केवल अन्तिम पाठ के पूर्ण होने पर ही करना है। इसी प्रकार 'फल-श्रुति' तो निकली ही हुई है, किन्तु यदि उसे पढ़ना है, तो गुप्तावतार बाबा श्री द्वारा निर्दिष्ट 'फल-श्रुति' को केवल पहले और अन्तिम पाठ में पढ़ सकते हैं। साधक लोग इस प्रयोग को अपनी सुविधानुसार प्रति-दिन एक, तीन, पाँच और दस पाठ करके सहज ही सम्पन्न कर सकते हैं।

(ख) इस 'प्रचलित प्रयोग' को कुछ और भी संक्षिप्त इस प्रकार कर सकते हैं कि पर्याय के अन्त में 'दमयन्ती-नलाभ्यां' आदि जो श्लोक दिया गया है, उसे केवल पहले और अन्तिम पाठ (आवृत्ति) में पढ़े।

२ इस प्रयोग के करने का समय 'प्रयोग-पारिजात' के अनुसार रात्रि के पहले प्रहर से तीसरे प्रहर तक और चौथे

प्रहर से सूर्योदय तक है। इस प्रकार प्रयोग हेतु क्या दो अवधियाँ हैं ?

'निशान्ते प्रति-दिनं...' से स्पष्ट है कि उक्त प्रयोग के करने का समय रात्रि के अन्त में सूर्योदय के पूर्व तक है। अतः रात्रि के पहले प्रहर से तीसरे प्रहर का जो उल्लेख है, उसका आशय यह है कि इस अवधि में अपने इष्ट-देवता का विधि-वत् निशार्चन (चक्र-पूजन) करना चाहिये। उसके वाद उक्त प्रयोग को करे। उत्तम पक्ष यही है। ऐसा करने में असमर्थ हो, तो केवल उस प्रयोग को ही चौथे प्रहर से सूर्योदय तक की अवधि में सम्पन्न करना चाहिये।

३ प्रयोग-काल में यदि कहीं बाहर जाना पड़े या किसी अन्य कारण से किसी दिन प्रयोग को न कर पाये, तो क्या 'पाठ' दिन के समय सूर्य के प्रकाश में किया जा सकता है ?

नहीं। ऐसी दशा में निर्दिष्ट विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्त में केवल मूल-मन्त्र [पृष्ठ ३२] का १०८ बार जप करना है, जो सरल है।

४ प्रयोग करते समय कोई त्रुटि होने पर प्रायश्चित्त के लिये १०८ पाठ करने का विधान बताया गया है किन्तु स्तुति-सहित चारों पर्यायों के १० पाठ में लगभग डेढ़ घण्टा लगता है। अतः १०८ पाठ करना कितना कठिन है, यह स्पष्ट है। प्रायश्चित्त में क्या कुछ और सुविधा नहीं मिल सकती ?

प्रायश्चित्त के लिये केवल मूल-मन्त्र का १०८ बार जप कर लें।

५ प्रयोग का पाठ क्या कुछ निश्चित समय तक करने के बाद विराम कर सकते हैं ? अथवा १६ हजार या ६ हजार जैसी भी स्थिति हो, उतनी संख्या में पाठ पूरे हो जाने पर ही विराम किया जा सकता है ?

प्रयोग-काल में प्रति-दिन निश्चित संख्या में ही पाठ करना है। जितने पाठ नित्य कर सके, उतनी ही संख्या का सङ्कल्प लेना चाहिये। इस प्रकार पुरश्चरण की कुल संख्या एक निश्चित अवधि में पूरी हो सकेगी और तव साङ्गता की पूर्ति के लिये यथा-सम्भव ब्राह्मण-भोजनादि कर्म करने चाहिये।...

निश्चित आवृत्तियों के मध्य में यदि अनिवार्य कारण-वश उठना पड़े, तो देवता से 'क्षमस्व' कहकर क्षमा-प्रार्थना-पूर्वक विराम कर सकते हैं और पुनः वापस आकर शेष आवृत्तियों को पूरा कर सकते हैं किन्तु यह ध्यान रहे कि जो आवृत्ति चल रही है, उसे पूर्ण करके ही उठे। यदि वापस न आपाए, तो उस दिन के लिए प्रायश्चित करना होगा।

६ अधिकतम पाठ की संख्या १० है किन्तु १६ हजार पाठ करने हों तो १६ सौ दिन अर्थात् ४।। वर्ष और छः हजार पाठ में छः सौ दिन अर्थात् २ वर्ष का समय लगेगा। इतने दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य और भूमि पर शयन करने आदि के नियमों का पालन करना कैसे सम्भव है ?

पाठ की संख्या जहाँ सहस्र या अधिक है, वहाँ केवल मन्त्र का ही जप उतनी संख्या में पूरा करना है। स्तुतियों सहित चारों पर्यायों की उतनी संख्या में आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है।

७ प्रयोग के सम्बन्ध में लिखा है कि 'न होमो न च तर्पणं', किन्तु इसके साथ ही यह भी निर्देश मिलता है कि 'पायसेन हुनेद् देवि, नारिकेल-फलैस्तिलैः।' इस विरोधाभास का क्या कारण है ?

'न होमो न च तर्पणं' वास्तव में महिमा-परक वचन है। अनुष्ठान करने की अवस्था में सामान्य नियमों का पालन करना ही उचित है, अन्यथा अभीष्ट की सिद्धि प्रायः नहीं होती।

८ प्रयोग के अन्तर्गत जो ध्यान दिये गये हैं, उनमें महा-त्रिपुरसुन्दरो और गणपति के ध्यान तो स्पष्ट हैं किन्तु 'सम्वा-दाग्नि' और 'अमृत-रुद्र' के ध्यान स्पष्ट नहीं हैं। क्या ये दोनों एक ही समान हैं ?

'संवादाग्नि' वैदिक ऋषि हैं और 'अमृत-रुद्र' हैं देवता। अतः दोनों पृथक् हैं और उनके अलग-अलग ध्यान हैं। ध्यानों को ध्यान से समझने पर यह बात स्पष्टतया हृदयङ्गम हो जाती है।

९ 'अनूठे प्रयोग' के मन्त्रोद्धार के १६ श्लोकों की हिन्दी टीका हो जाती, तो उसे समझने में सरलता होगी।

मन्त्रोद्धार का सम्बन्ध 'प्रचलित प्रयोग' से है, 'अनूठे प्रयोग' से नहीं। इसी से उसे 'अनूठे प्रयोग' के बाद दिया गया है। 'प्रचलित प्रयोग' से मिलाकर पढ़ने से मन्त्रोद्धार का अर्थ स्पष्ट हो जायगा और हिन्दी टीका की आवश्यकता नहीं मालूम होगी।

१० क्या चारों पर्यायों का जप, होम व तर्पण करना है? या पृष्ठ ३२ पर दिये गये ४३ अक्षरों के महा-गणपति व श्री ललिता (पञ्च-दशाक्षरी) के परस्पर-गुम्फित मन्त्र मात्र का ही जप, होम, तर्पण करना है।

निशा-पूजन अपनी परम्परा के अनुसार करके निशा के अन्त में चारों पर्यायों का पाठ कर ४३ अक्षरों के मूल-मन्त्र का यथा-संख्यक जप कर उसके दशांशानुसार क्रमशः होम, तर्पण, मार्जन-पूर्वक पुरश्चरण हो जाने पर ब्राह्मण-भोजनादि कर्म करना उचित है। अपने गुरुदेव की अनुमति से इस साधना-क्रम में अपनी परिस्थिति के अनुसार अपेक्षित सुधार भी कर सकते हैं।

११ 'वांछा कल्पलता' के 'अनूठे प्रयोग' की विधि काफी सरल और सुविधा-जनक है किन्तु इस प्रयोग में भी क्या 'प्रचलित प्रयोग' के समान विनियोग, न्यास, कर-न्यास और ध्यान भी करना होगा?

नहीं। केवल प्रथम पर्याय में उल्लिखित विनियोग का ही एक वार पाठ करना है।

१२ गुप्तावतार बाबा श्री के अनुसार प्रथम पर्याय के मन्त्र के अन्त में 'अविघ्नमस्तु, शुभानि मे अस्तु, प्रतिकूलं मे नश्यतु' आदि जो १२ उद्बोधक वचन दिये हैं, वे उत्तम हैं किन्तु इन वचनों का पाठ क्या द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पर्यायों में भी करना है?

प्रथम पर्याय में उक्त उद्बोधक वचनों का पाठ करना आवश्यक है। बाद के पर्यायों में इनका पाठ करना आवश्यक

नहीं है। यदि पाठ करे, तो श्रेयस्कर ही है। अधिकस्य अधिकं फलम्।

१३ प्रचलित प्रयोग में 'ॐ—४, क-५, ह-६, स-४, ए-३, सौः-४' का आशय क्या है? क्या इन्हें इसी रूप में जप करना होगा?

वारम्वार किसी मन्त्र के आने पर संक्षेप में लिखने से प्रायः सांकेतिक पद्धति अपनाई जाती है। उपर्युक्त पाँचों संकेतों का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

ॐ-४ = ॐ ऐं ह्रीं श्रीं, क-५ = क ए ई ल ह्रीं, ह-६ = ह स क ह ल ह्रीं, स-४ = स क ल ह्रीं, ऐं-३ = ऐं क्लीं सौः, सौः-४ = सौः क्लीं ऐं ॐ।

जप करते समय सम्पूर्ण मन्त्र (सभी बीजाक्षरों) का जप करना चाहिये। सांकेतिक रूप जप करने के लिये नहीं हैं।

१४ 'अनूठे प्रयोग' के तीसरे पर्याय के अन्त में (पृ० १६) तीन 'ठं' बीजों से सम्भवतः श्री विद्या (ललिता-पञ्चदशी) मन्त्र को सम्पुटित किया है किन्तु इसमें 'क एं ई' के बाद प्रथम कूट के 'ल' को छोड़ दिया गया है और द्वितीय कूट के बाद 'ह्रीं' का सम्पुट दो बार आया है। क्या यह ठीक है?

उक्त प्रयोग की जो पाण्डुलिपि श्री गोपाल राव दिनकर महाशब्दे, इन्दौर (म० प्र०) से हमें प्राप्त हुई, उसे ही ज्यों-का-त्यों प्रकाशित किया गया है। गुरुदेव की अनुमति से उसमें अपेक्षित संशोधन किया जा सकता है।

१५ 'अनूठे प्रयोग' के पृष्ठ १७ पर पञ्च-दशाक्षरी ललिता-मन्त्र के प्रत्येक बीज को तीन-तीन बार लेकर उसे जिन बीजों

से सम्पुटित किया गया है, उसके विलोम व अनुलोम के मध्य में 'ॐ ॐ ॐ', 'ह्लीं ह्लीं ह्लीं', 'श्रीं श्रीं श्रीं' क्यों दिये गये हैं ?

जब तक उक्त प्रयोग की दूसरी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त नहीं होती, तब तक प्रकाशित पाठ ही माननीय है। अपने गुरुदेव की अनुमति से संशोधन अवश्य किया जा सकता है।
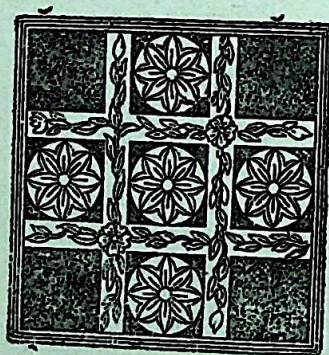
'कांक्षा-कल्पतरु' प्रयोग

'श्रीवांछा-कल्पतरु' से मिलते-जुलते नाम वाला एक प्रयोग 'चण्डी' वर्ष २३ (संवत् २०२१) के 'शारदीय नवरात्र विशेषाङ्क' में प्रकाशित हुआ था, जो 'श्री दुर्गा सप्तशती' से सम्बन्धित है। अब वह अङ्क अप्राप्य है। अतः उसे यहाँ प्रकाशित करना उचित प्रतीत होता है। उक्त प्रयोग गोरखपुर (उ० प्र०) से पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद पाठक शास्त्री ने भेजने की कृपा की थी। प्रयोग सरल है और साथ ही अनुभूत है। गोपनीय भाव से ही इसका अनुष्ठान करना चाहिए अर्थात् जब इसे करना प्रारम्भ करे, तो किसी को पता न चलना चाहिये कि किस उद्देश्य से क्या किया जा रहा है क्योंकि—'गुप्ता तु सिद्धा, प्रकटा तु भ्रष्टा'—यह चिर काल से अनुभूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का पालन सभी प्रकार की साधना के सन्दर्भ में आवश्यक है। उक्त प्रयोग निम्न प्रकार है—

श्रीशिव-उवाच—

रक्तेन चन्दनेनेह बिल्व - कण्टकेन च।
बिल्व - पत्रेषु दुगार्याश्चरितं मध्यमं शिवे ॥

चन्द्रे शुक्रेऽथवा वारे नवरात्र - चतुष्टये ।
अष्टोत्तर-शतं योऽत्र संलिखेच्छ्रद्धयान्वितः ।।
पूजयित्वा विधानेन देव्या हस्ते निवेदयेत् ।
सर्व-बाधा-विनिर्मुक्तो धन-धान्य-सुतान्वितः ।।
सद्यो भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिश्च गच्छति ।।
नारायणेन साकं सा देवी विश्वम्भरी रमा ।
रमते भवने तस्य धन-धान्य - प्रवर्षिणी ।।
यत्नोऽयं च मया दृष्टः सर्वत्र सफलः प्रिये !
येभ्यः केभ्योऽपि न देयः प्रयोगः साधु-सेवितः ।।

अर्थात् भगवान् शिव जी भगवती पार्वती से कहते हैं—'चारों नवरात्रों (चैत्र, आषाढ़, आश्विन, पौष) में सोमवार या शुक्रवार के दिन बिल्व-पत्रों पर भगवती दुर्गा के मध्यम चरित को रक्त-चन्दन से बिल्व के काँटों द्वारा १०८ वार श्रद्धा-पूर्वक लिखे। तदनन्तर भगवती का सविधि पूजन कर फल देवी के हाथों में समर्पित करे।

इस प्रकार अनुष्ठान करनेवाला धर्मात्मा व्यक्ति सब बाधाओं से तुरन्त मुक्त होकर धन-धान्य-पुत्रादि से सम्पन्न होता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। नारायण के साथ रहकर विश्व की सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली देवी लक्ष्मी धन-धान्य की वर्षा करती हुई उस साधक के भवन में निवास करती हैं। हे प्रिये ! यह उपाय मैंने सर्वत्र सफल होते देखा है। इसे हर किसी को न बताना चाहिए। साधु जन ही इस प्रयोग को करते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि एक दिन में १०८ वार पूरे मध्यम चरित को लिखना सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में गुरुदेव से अनुमति लेकर चारों नवरात्रों के दोनों दिनों में केवल एक-एक वार ही लिखने का प्रयास करना चाहिये। इस प्रकार वर्ष में आठ वार यह लेखन-कार्य सम्पन्न हो सकेगा। और यदि ऐसा भी न कर सके, तो वीज-त्रयात्मक सप्तशती के अनुसार मध्यम चरित के केवल वीज-मन्त्रों को लिखकर इस अनुष्ठान को सम्पन्न करे।

▩ 'वीज-त्रयात्मक सप्तशती' पुस्तक-रूप में उपलब्ध है। मूल्य ३-०० रु०।

हमारे द्वारा 'चण्डी' नामक अनूठी मासिक पत्रिका पिछले ४५ वर्षों से प्रकाशति हो रही है।

विशेष जानकारी के लिये सम्पर्क करें—

चण्डी कार्यालय

अलोपीबाग मार्ग प्रयाग—२११००६

शाक्त-धर्म

सम्बन्धी

प्रामाणिक पुस्तकों के लिए

सम्पर्क करें

चण्डी कार्यालय

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६